पंचायती राज एवं सामाजिक रूपान्तरण (भूमिका, चुनौतियाँ एवं सुधार के सुझाव)

रवि कुमार
शोध छात्र,
वाणिज्य विभाग,
वीर कुँअर सिंह विश्वविद्यालय,
आरा, बिहार

सारांश

हमारी संस्कृति और सभ्यता की भाँति ही पंचायत और पंचायती–राज का अतीत गौरव”ाली रहा है। पंचायत की कल्पना संस्कृति और वि”ोषकर भारतीय राज–व्यवस्था की आधारि”ाला ह। भारतीय समाज में पंच ‘परमे”वर’ न केवल प्र”ासकीय कार्य ही करते बल्कि आपसी विवादों को हल करने एवं विकास संबंधी काया को करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे।

पंचायती राज लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का आधार है। सामाजिक परिवर्त्तन में पंचायती राज का महत्त्व इसी बात से स्पष्ट है कि ग्राम पंचायतें गाँव के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ग्राम पंचायतों को ग्रामीण विकास का स”ाक्त माध्यम माना जाता है।

पंचायती राज–व्यवस्था लागू हो जाने से चुनावों में जातिवाद तथा राजनैतिक दलबंदी का जोर बढ़ा। जैसे–जैसे शहरी भू–माफियाओं ने वन, गोचर, कृषि भूमि पर कब्जे किये वैसे–वैसे पंचायती राज संस्थाओं की आय के साधन सीमित होते चले गये और इस कारण इन्हें अपनी योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए सरकार पर निर्भर रहना पड़ा। इन्हें वित्तीय सहायता प्राप्त होने के बाद इन पर राज्य सरकार का हस्तक्षेप बढ़ने लगा। इन संस्थाओं में राजनैतिक दलों के प्रवे”ा के कारण स्थानीय लोगों में आपसी द्वेष तथा मनमुटाव की भावना उत्पन्न हो गई। राजनैतिक दलों के नेता जनता की समस्याओं को सुलझान के बजाय व्यक्तिगत स्वार्थ साधते हैं और शहरी भू–माफियाओं को प्रश्रय देकर गोचर और कृषि भूमि का आवासीय–औद्योगिक रूपान्तरण कराते रहते हैं।

निष्कर्षतः भू–माफिया प्रवृत्ति, जातिवाद और राजनैतिक दलबंदी पंचायती राज के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। आव”यकता इस बात की है कि इस चुनौती का सामना कर इन संस्थाओं की कार्यप्रणाली को अधिक तर्कसंगत बनाया जाये। इनकी उपेक्षा करके केन्द्रीयकरण को बढ़ावा देना दे”ा के लिए घातक होगा। ग्राम पंचायत एवं क्षेत्र पंचायत के बीच समन्वय हो। साथ ही पंचायत की आर्थिक स्थिति सधारने के लिए राजस्व का कुछ वि”ोष भाग दिया जाय। राजनीतिक गुटबंदी से पंचायत को दूर रखा जाय ताकि समाज का हर वर्ग इससे लाभान्वित हो जिससे सामाजिक गतिविधियों को बढ़ावा मिले।

मुख्य शब्द : पंचायती राज की भूमिका, सामाजिक चुनौतियाँ, सुधार के सुझाव एवं निष्कर्ष।

प्रस्तावना

भारतीय वाङमय में पंचायती राज व्यवस्था की परिकल्पना कोई नई विचारधारा नहीं है। वैदिक काल में ग्राम से लेकर राष्ट्र ही नहीं अपितु विश्व की शासन व्यवस्था पंचायत पद्धति पर आधारित थी। ऋग्वेद के सूक्त 3।।5।। 8 में ‘‘पंचेति’’ कहकर उस समय की कल्पना व्यवस्था की ओर इशारा किया गया है। कबिलाई शासन व्यवस्था से वैदिक काल, रामायण काल, महाभारत काल, गुप्त काल, मौर्य काल, बुद्ध के समय का चिंतन इस बात का साक्षी है कि यहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति की नींव पंचायत की सूत्रिका में आबद्ध हैं।

भारत वर्ष समेत दुनिया में जितने भी देश है, किसी न किसी रूप में वैदिक काल की झलक एवं पंचायती राज का सुन्दर समन्वय–सा दिखाई पड़ता है। संयुक्त परिवार की व्यवस्था इस बात की साक्षी है कि बीस परिवार वाले सदस्यों में एक घर का मालिक और पूरे परिवार के सदस्यों का कुशल क्षेम, सलाह एवं विकास पंचायती राज की देन है। यह अनुमान किया जाता है कि जब मानव समाज का उदय हुआ, लगभग उसी समय से पंचायती राज का उदय हुआ होगा?

ऋषि परंपरा में कार्य/श्रम का विभाजन पंचायती व्यवस्था का मूल रूप माना जा सकता है। इस व्यवस्था के तीन सूत्र दिखाई पड़ते हैं–

1. घनिष्ठता– इसका अर्थ है एक दूसरे के बीच अंतरंगता का विकास।
2. प्रतिबद्धता– इसका अर्थ है एक दूसरे के प्रति विश्वास।
3. अभिलाषा– अर्थात् समाज को जानने, समाज में रहन का भाव।

" त्वमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगा। "

ऋग्वेद 10 | |07 |6

पंचायती व्यवस्था को प्रारंभ करने का श्रेय राजा पृथु को है जिन्होंने धर्मपूर्वक शासन करते हुए प्रजा को प्रसन्न किया। ऐसा अनुमान है कि पंचायत प्रणाली को राजा पृथु ने ही गंगा–यमुना के बीच धरातल में स्थापित की थी। गोस्वामी तुलसीदास ने तो मानव शरीर को ही पंचायती राज की कसौटी पर परख लिया। उनका दर्शन अद्भुत है–

"मुखिया मुख–सा चाहिए, खान–पान कहुँ एक।
पाले पोषे सकल अंग, तुलसी रहित विवेक।।"

साहित्य सचेतक प्रेमचन्द ने अपनी अमरकृति में 'पंच परमेश्वर' कहानी को प्रतिपाद्य के रूप में प्रस्तुत किया है– 'मैं पंचायत करूँगी' तथा 'बेटा बिगाड़ के डर से ईमान की बात नहीं कहोगे।'

महर्षि मेधा लिखते है–

"सत्य मनुज है ज्ञानी होता, किन्तु अकेला नहीं वहीं।
जहाँ पंच अन्वे"ाण होता, ज्ञान–विभु का उदय वहीं।।"

सारांशतः पंच को 'परमेश्वर' की उपाधि से अलंकृत करना भारतीयता के अद्भुत सोच का परिचायक है।

प्राचीन काल की शासन व्यवस्था क्यों सुदृढ़ एवं सशक्त थी? उसका उत्तर यहीं हो सकता है कि उसमे चिंतन, मनन एवं निदिध्यासन का पुट होता था और आधुनिक काल पंचायती राज भी तो वहीं है जिसमें चिंतन–विकास का मूलभूत सिद्धान्त या रूप, मनन–समग्र के लिए कार्य करना, निदिध्यासन–परसुख में स्वसुख का आत्मीय भाव देखना।

आज से दो दशक पूर्व जब दश की जनसंख्या का अधिकाधिक भाग निरक्षर था, उस समय पंचा की सभा एवं वृद्ध लोगों के अनुभव और सूझबूझ से गाँव समाज के विकास की कहानी रची जाती थी।

1. इन सबके बीच में भारतीय संस्कृति एवं परंपरा का बीज वृक्ष दिखाई पड़ता हैं। हम उससे पीछे महाभारत काल अभेद ब्यूह रचना–समूह गठन कर कार्य करना, मतलब पंचायत के माध्यम स जीत हासिल करना।
2. अपार सैन्य बल– संगठन शक्ति, मतलब राष्ट्र के लिए मर मिटना अर्थात् पंचायत की करणीयता।
3. अनंत दैवीय शक्तियाँ–समूह के साथ प्रार्थना का सार संभार।
4. विलक्षण विद्वत वैदु"य– अनेक मतों, रिवाजों तथा ज्ञान विज्ञान की परिपुष्टि समूह के साथ करना और पूरी मानव जाति के लिए करना।
5. पारगामी शास्त्रज्ञान– दूसरी सभ्यता जनगण वाले से उनकी विशेषताओं को जानना एवं सबके हित चिंतन के लिए पुनः पुनः समूह शक्ति को बढ़ावा देना।

फिर तो उद्घोष आया, पुरातन व्यवस्था को खोजो। सबके चिंतन के साथ जुड़कर समग्र विकास की कल्पना करो और सबको जोड़ो–राष्ट्र का कल्याण, समाज का कल्याण एवं मानव जाति का कल्याण होगा। फिर तो स्वाधीनता खो चुके राष्ट्र ने गौरव से अपना सिर ऊपर उठाया। आक्रान्ताओं को भागना पड़ा एवं पंचायती राज की नींव भी पड़ी।

पंचायती राज का मतलब सत्ता का विकेन्द्रीकरण है। भारत में आजादी से पहले सत्ता के विकेन्द्रीकरण बनाम केन्द्रीकरण के मुद्दे पर व्यापक बहस जारी हो चुकी थी। एक तरफ जहाँ सत्ता के विकेन्द्रीकरण गाँधीवाद के आधारभूत सिद्धान्तों से एक है जिसके अनुसार जन–जन तक वास्तविक लाभ को पहुँचाने के लिए ग्राम स्तर पर पंचायत की स्थापना आवश्यक है। वहीं दूसरी ओर आजाद हिन्द सेना के मतानुसार देश में अधिक संख्या में राज्यों का होना, जो उस समय लगभग 600 की संख्या में थे, देश के लिए अभिशाप था। इस मत के अनुसार देश में सत्ता के अनेक केन्द्र बनने से अधिक वैमनस्यता फैलता है, गटबाजी बढ़ती है और बिचौलियों का समूह तैयार होता है जो जनता तक विशेषकर निर्धन जन तक वास्तविक लाभ नहीं पहुँचने देता। आजादी के बाद स्वाभाविक रूप से देश में पंचायती राज व्यवस्था स्थापित हुई। परन्तु सुभाष चन्द्र बोस का कथन आज भी प्रासंगिक है।

भारतीय समाज की खास विशेषता यह रहा है कि हमारे देश का आकार बड़ा, जटिल एवं विविधतापूर्ण है। यह विभिन्न क्षेत्रों में तरह–तरह की धार्मिक, भाषायी, क्षत्रीय एवं सांस्कृतिक भिन्नताएँ हैं। विभिन्न क्षेत्रों की जरूरतें एक–दूसरे से भिन्न हैं। इस स्थिति में स्थानीय शासन को प्रभावपूर्ण बनाने का एक मात्र साधन था–"लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण"। विकेन्द्रीकरण के द्वारा ही समाज के कमजोर और वंचित सामाजिक समूहों की शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के महत्त्व को देखते हुए आजादी के तुरंत बाद अधिकांश राज्य सरकार ने निर्वाचित ग्राम पंचायतों का गठन करना आरंभ कर दिया। परंतु देश के सभी हिस्से में पंचायतों के गठन का स्वरूप एक जैसा नहीं रहा। तब यह जरूरत महसूस की गई की एक समान नीति के आधार पर पंचायती व्यवस्था में इस तरह परिवर्त्तन लाना जरूरी है जिससे इसे ग्रामीण जीवन मे परिवर्त्तन लाने का एक प्रभावशाली माध्यम बनाया जा सके और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार ने सन् 1957 में 'बलवंत राय मेहता समिति' का गठन कर देश के विभिन्न हिस्सों में पंचायतों का अध्ययन कराया। समिति ने अपने रिपोर्ट में यह सुझाव दिया कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए ग्राम–पंचायतों की जगह त्रि–स्तरीय व्यवस्था में ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, प्रखंड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद की स्थापना करके उन्हें परस्पर इस प्रकार समन्वित किया जाय कि गाँवों का स्थानीय शासन अधिक व्यवस्थित बने।

साथ ही पंचायतों को आर्थिक साधन एवं अधिकार से संयोजित किया जाय ताकि अपनी व्यवस्था को संतोषप्रद संचालित कर सकें। इसी योजना को समिति ने 'पंचायती राज व्यवस्था' के नाम से संबोधित किया। बाद में सन् 1959 में सरकार ने कानून बनाकर पंचायती राज व्यवस्था लागू कर दी।

भारत मे पंचायती राज संस्थाओं का विकास देश के ग्रामीण एवं आर्थिक विकास के साथ जोड़कर देखा जाता रहा है। पंचायती राज संस्थाएँ आबादी बाहुल्य क्षेत्र की आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए लोकतांत्रिक माहौल की जरूरत पर भी जोर देती है। अगर गाँवों में लोगों के हाथों में अपने फैसले लेने का अधिकार हो तो विकास के मामले में उनकी पहलकदमी बढ़ जाती है।

साथ हीं लोगों के हाथ में यदि उनके सामूहिक विकास की जिम्मेवारी और आवश्यक संसाधन सौंप दिये जाय तो 'सोने पे सुहागा' हो जाता है और निश्चित रूप से उनकी भागोदारी विकास की दोहरी जरूरतों को पूरा करती है।

सामाजिक रूपान्तरण (परिवर्त्तन) में पंचायती राज की भूमिका को विभिन्न बिन्दुओं के तहत स्पष्ट किया जा सकता है–

1. पंचायती राज में ग्राम स्तरीय योजनाएँ ग्राम पंचायत तैयार करती है जबकि जिला पंचायत उसे स्वीकार करक उनके लिए आर्थिक साधन उपलब्ध कराती है। परिणामस्वरूप विकास की पूर्ण जिम्मेदारी स्थानीय नेतृत्व के हाथों आ जाती है। जब सामान्य नीतियों का निर्धारण स्वयं जनता द्वारा किया जाने लगता है तो शासन में अपने आप उनकी भागीदारी बढ़ने लगती है। यही नीचे से ऊपर की ओर होने वाला शासन है।
2. वर्त्तमान समय में गाँवों का विकास किसी विशष जाति के आनुवांशिक मुखिया द्वारा नहीं किया जाता बल्कि ग्रामीणों द्वारा चुने गये जन प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। पंचायती राज संस्थाएँ सामान्य ग्रामीणों को मताधिकार का अर्थ बताने के साथ ही स्पष्ट करती है कि किस तरह से आप स्वयं अपनी समस्याओं का समाप्त कर सकते हैं। इससे एक नये ग्रामीण नेतृत्व का विकास हुआ है।
3. समाज के कमजोर वर्गो का विकास पंचायती राज की एक विशेष उपलब्धि है। त्रि–स्तरीय पंचायत के समस्त पदो के लिए अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं को आरक्षण मिलने से इन वर्गो की स्थिति में काफी सुधार सम्भव हुआ है। कभी अबला कहलाने वाली महिलाएँ, जो घर के आँगन मे बँधी रहती थी, वो आज समाज में अपनी दमदार उपस्थिति दर्ज कराकर दूसरों को अपना संबल प्रदान कर रही हैं। महिला सशक्तिकरण को बढ़ाने में पंचायती राज का विशेष योगदान है।
4. स्वस्थ मानव हीं सामाजिक दायित्वों का भली भाँति निर्वहन कर सकता है। पंचायती राज संस्थाएँ लोगों के स्वास्थ्य के लिए विशेष प्रयत्न करती हैं। जिसके प्रभाव से मातृत्व और शिशु कल्याण को प्रोत्साहन मिलता है। ग्राम पंचायतों द्वारा संक्रामक बोमारियों की रोकथाम, स्वच्छ पेय जल की व्यवस्था और स्वास्थ्य सुविधाओं सम्बन्धी कार्यो के परिणामस्वरूप ग्रामीण स्वास्थ्य में उल्लेखनीय सुधार हुआ है।
5. ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधार का श्रेय पंचायती राज व्यवस्था को जाता है। सरकार द्वारा विभिन्न विकास कार्यक्रमों, योजनाएँ, जो पंचायत के द्वारा सम्पन्न होती हैं, उसके फलस्वरूप कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई, सिंचाई का संसाधन बढ़ा, पशुओं की नस्ल में सुधार हुआ, स्वरोजगार में वृद्धि हुई। परिणामतः ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय बढ़ा। जिससे वहाँ के लोगों का रहन–सहन जीवन स्तर, मनोवृत्ति इत्यादि में आशातीत परिवर्त्तन हुआ।
6. शिक्षा ही मनुष्य को पशु से अलग करती है। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था करना पंचायती राज संस्थाओं का प्रमुख कार्य है। इस क्षेत्र में पंचायती राज का योगदान सराहनीय रहा है। वास्तव में शिक्षा लोगों में जागरूकता लाकर उनके व्यवहार के तौर तरीके में उपयोगी परिवर्त्तन लाती है।
7. वर्त्तमान समय में ग्रामीण समाज की परम्परागत ढाँचा बदलने लगी है क्योंकि गाँवों में आज सामाजिक एवं स्थानीय गतिशीलता की वृद्धि हुई है। निम्न जातिया की स्थिति में होने वाला सुधार गाँवों में सामाजिक गतिशीलता को स्पष्ट करता है जबकि नगरीय सम्पर्क स्थानीय गतिशीलता से संबंधित है। यह परिवर्त्तन भी पंचायती राज के प्रयत्नों से ही सम्भव हो सका।
8. भारतीय जनमानस में 'पंच' को 'परमेश्वर' की संज्ञा दी गई। सस्ता एव शीघ्र न्याय देने में ग्रामीण स्तर की न्याय पंचायतों का विशेष योगदान माना जाता है। जैसे–जैसे न्याय पंचायतों को विवादों के निपटारे के अधिक अधिकार मिलेंगें, सामाजिक परिवर्त्तन लाने में इनका योगदान बढ़ता हीं जायेगा। निःसंदेह स्वयं मनोनीत प्रतिनिधियों पर जनता की अपूर्व श्रद्धा है।

स्पष्टतः ग्रामीण पुनर्निर्माण अर्थात् सामाजिक रूपान्तरण में पंचायती राज की भूमिका एवं महत्त्व इसी बात से स्पष्ट है कि ग्राम पंचायतें गाँव के सार्वजनिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करती है।

पंचायती राज के समक्ष सामाजिक रूपान्तरण की चुनौतिया

गाँधी जी का विचार था कि भारत के सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए एवं जन–जन तक वास्तविक लाभ पहुँचाने के लिए पंचायती संस्था अनिवार्य है। परन्तु इस योजना का परिणाम आशा के अनुरूप कसौटी पर खरा नहीं उतरा। आगे चलकर ऐसा अनुभव किया गया कि प्रशासनिक तंत्र जुड़वा पंचायती राज व्यवस्था को प्रमाणिकता से चलने नहीं देती।

हालाँकि भारत में केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा ग्राम पंचायतों को प्रभावपूर्ण बनाने के सभी सम्भव प्रयत्न किये गये लेकिन अनेक विषम परिस्थितियों के कारण हमारी पंचायतें उतनी सफल नहीं हो सकी है जितनी

उनसे आशा की जाती थी। इसके लिए उत्तरदायी कारणों को संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है–

1. पंचायती राज की सफलता आपसी सौहार्द, समानता एवं भाई चारे के सिद्धान्त पर आधारित है जबकि आजकल गाँवों में सभी चुनाव साधारणतया जातिगत आधार पर ही लड़े जाते हैं। इससे न तो योग्य व्यक्तियों का चुनाव होता है और न ही बाद में कोई विकास कार्य सम्भव हो पाता है।
2. जहाँ एक ओर पंचायतों के चुनाव में दलबन्दी होने से पंचायतें अपना कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर पातीं और दूसरी ओर विभिन्न राजनीतिक दल भी पंचायतों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का पूरा प्रयत्न कर रहे हैं। यह स्थिति पंचायतों को संघर्ष का केन्द्र बना देती हैं। हद तो उस समय हो जाता है जब यह दलबन्दी खून–खराबे की तरफ बढ़ जाता है।
3. ग्राम पंचायत के प्रधान, उप प्रधान तथा कार्यकारिणी के सदस्यों के चुनाव की प्रक्रिया भी दोषपूर्ण है। यद्यपि सन् 1977 से यह चुनाव गुप्त मतदान प्रणाली के द्वारा होने लगे हैं परन्तु विभिन्न शक्ति समूहों की अवैधानिक गतिविधियों के कारण स्थिति में अधिक सुधार नहीं हुआ है। फलस्वरूप पंचायत का गठन होने से पहले ही सम्पूर्ण गाँव अनेक विरोधी गुटों में विभाजित हो जाता है। स्वाभाविक है कि बाद में ग्राम प्रधानों को किसी भी कार्य में ग्रामीणों का सहयोग नहीं मिल पाता।
4. अशिक्षा के अभाव में समाज के उच्च शिखर पर पहुँचना नामुमकिन है। यह ग्रामीणों को बुरी तरह से जकड़ रखा है। अशिक्षित जनता न तो पंचायत के कार्य को समुचित रूप से समझ पाती है और न ही पंचायत के कार्यो में अपना योगदान दे पाती है जिससे अनेक योजनाएँ रद्दी की टोकरी में पड़ी रह जाती है।
5. आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो तभी पंचायत राज सामाजिक गतिविधियों का बढ़ावा देगा। परन्तु हमारे देश में पंचायतों की आय इतनी कम है उनके स्वास्थ्य, परिवहन, स्वच्छता, रोशनी, भूमि प्रबन्ध और शिक्षा का प्रबन्ध जैसे कार्यो को पूरा करने की आशा कठिनता से ही की जा सकती है। यही कारण है कि ग्राम पंचायत के बहुत कार्य केवल कागजी–पन्नों में ही सिमट कर रह जाते हैं। यद्यपि सरकारी अनुदान भी इन्हें मिलता है परन्तु इन अनुदानों से पंचायतों के कर्मचारियों का वेतन भी पूरा नहीं हो पाता। नये पंचायती राज कानून के अनुसार अब पंचायतों को गाँव के भू–राजस्व से प्राप्त आय का कुछ भाग अनुदान के लिए प्रस्तावित है, परन्तु राजनैतिक चक्र के कारण यह कार्य भी अधूरा है।
6. पंचायती राज के समक्ष एक खास चुनौती यह है कि यहाँ उचित नेतृत्व की कमी है। यह वास्तविकता है कि ग्रामीण नेतृत्व की बागडोर कुछ प्रभावशाली या पेषेवर नेताओं के हाथों में रहती है जो सर्वजन हिताय के नाम पर स्व हिताय का कार्य करने में लगे है। उचित नेतृत्व न होने के कारण ग्राम पंचायत के लिए ऐसे व्यक्तियों का चुनाव हो जाता है जो गाँव की समस्याओं में तनिक भी रूचि नहीं लेते। संयोगवष यदि प्रतिनिधि महिला है तो वह प्रायः और इन समस्याओं के समाधान मे जुट नहीं पाती। यहाँ तक कि बैठकों के दौरान भी सरपंच पति, मुखिया पति हीं अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते हैं।
7. ग्राम पंचायतों के कार्यो की सूची इतनी लंबी है कि उन्हें सफलतापूर्वक पूरा करना अत्यंत कठिन है। इसके फलस्वरूप पंचायत के अधिकारी व्यावहारिक कार्यो में अधिक रूचि न लेकर कागजी खानापूरी में ही अपना समय नष्ट कर देते हैं।

निष्कर्षतः यदि वर्त्तमान विकेन्द्रित पंचायती राज व्यवस्था को सुचारू रूप से कार्य करना सम्भव है तो तीनों स्तरों पर पंचायती राज संस्थाएँ बहुत चुस्त–दुरूस्त होनी चाहिए। साथ ही सभी को अपने स्वाथो का त्याग कर सेवार्थ कार्य करना चाहिए अन्यथा अफसोस रहेगा–

''बरबाद गुलिस्ता करने को बस एक ही उल्लू काफी है।
जहाँ हर डाल पर उल्लू बैठा हो अंजाम गुलिस्ता क्या होगा?''

सामाजिक रूपान्तरण के लिए पंचायती राज की स्थिति में सुधार के सुझाव

वास्तव में संविधान के 73वे संशोधन के द्वारा पंचायतों को अधिक प्रभावपूर्ण बना कर सामाजिक रूपान्तरण का प्रयास किया गया परन्तु इसके बावजूद भी अभी ऐसे अनेक सुधारों की आवश्यकता है जिनके द्वारा पंचायती राज को अधिक सशक्त बनाया जा सकता है। वे इस प्रकार हैं–

1. पंचायत में निर्धारित कायो की संख्या को कम किया जाना चाहिए। साथ ही सभी कार्य इतने स्पष्ट हों कि उन्हें पंचायत के सीमित साधनों के द्वारा पूरा किया जा सके।
2. ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत के कार्यो के बीच एक स्पष्ट विभाजन हो। वर्त्तमान अधिनियम में इन सभी संस्थाओं के काय एक–दूसरे के बहुत कुछ समान होने के कारण सभी संस्थाएँ अपना–अपना उत्तरदायित्व एक–दूसरे पर डाल सकती हैं।
3. पंचायती राज में आरक्षण के बाद आवश्यकता इस बात की है कि आरक्षित स्थानों पर निर्वाचित होने वाले सदस्यों को पंचायतों की कार्य पद्धति का समुचित प्रशिक्षण अवश्य दिया जाय ताकि वे पंचायतों में अधिक रचनात्मक भूमिका निभा सके। साथ ही विभिन्न बैठकों में सरपंच पति और मुखिया पति के स्थान पर महिला सरपंच एवं महिला मुखिया को भाग लेना चाहिए तभी समाज और सशक्त होगा तथा महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा भी मिलेगा।
4. पंचायतों की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए यह आवश्यक है कि भू–राजस्व से प्राप्त आय में से कम स कम पाँच प्रतिशत पंचायतों को अनुदान के रूप में दिया जाय। इसके अलावा पंचायतों की आय के स्थानीय साधनों में भी इस तरह वृद्धि किया जाय ताकि वे अपने निर्धारित कार्यो को पूरा करें।
5. सामाजिक रूपान्तरण एवं ग्राम्य जीवन को सामान्य जीवन धारा में लाना हो तो पंचायती संस्थाओं को

दलबंदी एवं गुटबंदी से अलग रखा जाय। इसके लिए यह आवश्यक है कि पंचायत के लिए चुनाव लड़ने वाला कोई भी प्रत्याशी किसी राजनीतिक दल का सक्रिय सदस्य न हो। साथ ही वह चुनाव जीत जाय तो सबको समान नजर से देखें और कार्य करें।

6. ग्राम पंचायतों को तभी सफल बनाया जा सकता है जब इसके सदस्यों की संख्या कम से कम हो तथा उनके लिए शिक्षा का न्यूनतम स्तर निर्धारित हो। शिक्षित प्रतिनिधि अपने मत के अनुसार स्व विवेक से कार्य कर सकेगा। वह किसी के बहकावे में या लोभ में नहीं आ पायेगा।
7. ग्राम पंचायत तथा क्षेत्र पंचायत के बीच समन्वय होना आवश्यक है। परस्पर स्वावलम्बन के सिद्धान्त को अपनाकर ग्राम पंचायत की बैठक में क्षेत्र पंचायत के प्रमुख को आमंत्रित करके उससे सुझाव प्राप्त किये जायें।
8. पंचायत के प्रतिनिधियों के आर्थिक एवं न्यायिक अधिकारों में वृद्धि होना आवश्यक है। यह तभी सम्भव है जब न्याय पंचायत के फैसले के विरूद्ध दोनों पक्षों को मिलने वाला अपील का अधिकार सीमित हो तथा न्याय पंचायत को दण्ड देने का अधिक अधिकार प्राप्त हो।
9. पंचायती राज में एक पंचायत क्षेत्र में से सरपंच का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान के द्वारा होना चाहिए तथा सरपंच को अपना कार्यकाल पूरा होने से पहले हटाने का किसी को अधिकार न हो।
10. पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत यह आवश्यक है कि किसी ग्राम पंचायत को भंग करने का अधिकार जिला स्तर के अधिकारी को न दिया जाय। चूँकि यह स्थानीय स्वशासन की एक महत्त्वपूर्ण संस्था है तथा इसे भंग करने का अधिकार केवल राज्य स्तर की संस्था को ही होना चाहिए।

वर्त्तमान में पंचायती राज संस्थाओं के विभिन्न दोषों को दूर किया गया है परन्तु अभी भी अनेक सुधारों की आवश्यकता है। तभी पंचायती राज व्यवस्था को लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का प्रभावपूर्ण माध्यम बनाया जायेगा।

स्पष्टतः पंचायती राज सामाजिक रूपान्तरण में उल्लिखित समस्यायों का समाधान स्वविवेक, नैतिकता, सरकार एवं जनता के सहयोग से सम्भव हो सकेगा। आवश्यकता इस बात को है कि इस चुनौती का सामना कर इन संस्थाओं की कार्य प्रणाली को अधिक तर्क संगत बनाया जाय। इसकी उपेक्षा करके केन्द्रीयकरण को बढ़ावा देना देश एवं समाज दोनों के लिए घातक होगा। पारस्परिक समन्वय निर्मित हो जिससे समाज का हर वर्ग इससे लाभ प्राप्त कर सके और सामाजिक गतिविधियों को बढ़ावा मिले। जिस तरह शिक्षा और उद्योग जगत् में पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप को बढ़ावा दिया जा रहा है, उसी प्रकार सामाजिक स्तर पर भी पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशीप को बढ़ावा देकर पंचायती राज को सामाजिक परिवेश से जोड़ा जा सकता है। तभी हम 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' को निभा पायेंगें। इन्हीं कामनाओं के साथ–

''हो के मायूस न यूं सुबह शाम ढलते रहिये,
जिन्दगी भोर है सूरज–सा निकलते रहिये।
एक हीं पांव पर ठहरोगे तो थक जाओगे,
इसलिए धीरे–धीरे सही राह पर चलते रहिये।।''

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद आदि भाष्य – स्वामी दयानन्द सरस्वती
2. महाभारत – प्रका"ान गीता प्रेस
3. तुलसी साहित्य – प्रका"ान गीता प्रेस
4. भारतीय संविधान – अनुच्छेद 40
5. बलवंत राय मेहता समिति 1957
6. समाज शास्त्र – एस0 बी0 पी0 डी0, आगरा इत्यादि।